प्रदूषण के लिए किसानों को ज़िम्मेदार ठहराना कितना सही ?

पिछले कई महीनों से भारत की राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली के वायु की गुणवत्ता अत्यंत खतरनाक स्तर पर बनी हुई है। आधिकारिक भारतीय वायु गुणवत्ता सूचकांक अपने शीर्षतम नकारात्मक स्तर 500 को छू चुके हैं, जबकि अंतरराष्ट्रीय मानकों पर आधारित सूचकांक 1,000 से 2,000 तक पहुँच गए हैं। वायु प्रदूषण का यह स्तर दिल्ली को प्रभावी रूप से एक गैस चेंबर में बदल चुका है। जहरीली गैसों से भरा घना धुआँ शहर के चप्पे-चप्पे को अपने आगोश में ले चुका है। लोग अपने घरों के भीतर भी जहरीली हवा के चपेट में हैं।

यह सूरतेहाल सिर्फ दिल्ली का ही नहीं है। सिंधु-गंगा का पूरा मैदान—जिसमें देश की तकरीबन आधी आबादी बसती है—पिछले एक दशक से भी ज्यादा समय से हर साल सर्दी के मौसम में एक जहरीले गैस चेंबर में बदल जाता है। हाँलाकि ग्रामीण इलाकों में खाना पकाने और आग तापने के लिए जलाई जाने वाली लकड़ी, खरीफ़ की कटाई (अक्तूबर-नवंबर) के बाद धान की पराली को जलाने की प्रथा, उद्योगों से निकलने वाला प्रदूषण, ईंट भट्ठों का धुआँ, और कूड़े-कचरे को खुले में जलाना भी बड़ी मात्रा में प्रदूषक पैदा करते हैं। ये प्रदूषक सर्दियों में धरती के ऊपर लंबे समय तक फँसे रहते हैं।

उत्तरी मैदानों में सर्दियों के दौरान निम्न तापमान, हवा में अत्यधिक नमी, कमजोर हवाएँ, और हिमालय की ऊँची पर्वतमाला—ये सभी कारक एक ऐसा स्थिर वातावरण (इन्वर्ज़न लेयर) बना देते हैं जिसमें प्रदूषकों का फैलकर तितर-बितर होना मुश्किल हो जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि पूरे क्षेत्र के शहरों और कस्बों पर लगातार धुंध की चादर छाई रहती है। सिर्फ़ जनवरी में कभी-कभार होने वाली हल्की बारिश ही इसे थोड़े समय के लिए ही हटाकर क्षणिक राहत देती है। हालाँकि उत्तर भारत के कई राज्य सर्दियों में जहरीली हवा की परत के नीचे दफ़न रहते हैं, लेकिन दिल्ली का प्रदूषण अक्सर सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करता है। इसका कारण यह है कि दिल्ली देश के राजनीतिक, प्रशासनिक, न्यायिक और मीडिया के अभिजात वर्ग का केंद्र है—और इनके विशेषाधिकार ज़हरीली हवा के सामने धरे के धरे रह जाते हैं। वास्तव में उत्तर भारत के कई छोटे शहरों और कस्बों में सर्दियों का प्रदूषण दिल्ली से भी अधिक गंभीर होता है, लेकिन उनकी स्थिति मीडिया के जेहन में खबर बनकर विरले ही उतर पाती है।

सर्दियों के दौरान होने वाला यह ख़तरनाक प्रदूषण एक गंभीर स्वास्थ्य संकट है। इससे साँस की बीमारियों, उच्च रक्तचाप, और कैंसर के मामलों में बढ़ोत्तरी हो रही है। बच्चों में बीमारियों का खतरा बढ़ रहा है, उनके मानसिक विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है और बुज़ुर्गों तथा शिशुओं की मृत्यु-दर में इज़ाफ़ा हो रहा है। इसका सबसे गंभीर असर आबादी के उस 90 प्रतिशत हिस्से पर पड़ता है जिसके पास न तो पर्याप्त सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएँ हैं और न ही महँगा इलाज कराने की क्षमता। इन लोगों के लिए बीमारी का मतलब होता है आजीविका का नुकसान, डॉक्टरों के चक्कर, महँगे टेस्ट और बढ़ते खर्च—जो उनकी ग़रीबी की खाई को और गहरा करते हैं।

प्रदूषण और स्वास्थ्य संकट के मूल कारणों की पहचान करके समाज के सबसे कमजोर वर्गों, यानी मजदूरों और किसानों, पर बोझ डाले बिना उनका अविलंब निदान करना भारत सरकार की अत्यावश्यक ज़िम्मेदारी है। लेकिन प्रदूषण से निपटने के लिए एक व्यापक योजना बनाने के बजाय भारत सरकार ने सारा दोष हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश के किसानों के मत्थे मढ़ दिया है। सरकार दिल्ली की ज़हरीली हवा की ज़िम्मेदार खरीफ़ फसल की कटाई के बाद होने वाली पराली जलाने की प्रथा को बता रही है। इन राज्यों पर दबाव डाला जा रहा है कि वे किसानों पर 5,000 रुपये से लेकर 30,000 रुपये तक का भारी जुर्माने थोपें।

ध्रुवी आचार्य (भारत), आठवाँ मायावी अवकाश, 2020.

वाहनों की बढ़ती संख्या प्रदूषण का मुख्य कारण है

दिल्ली के प्रदूषण का सबसे बड़ा कारण निजी वाहनों की बढ़ती संख्या है। कई अध्ययनों का अनुमान है कि दिल्ली की आधी से अधिक वायु प्रदूषण वाहनों से निकलने वाली हानिकारक गैसों से आता है। यह आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि तीन शहरों—मुंबई, कोलकाता और चेन्नई—की कुल कारों से ज्यादा कारें अकेले दिल्ली शहर में हैं, और इनमें से 90 प्रतिशत निजी कारें हैं।

यह समस्या सिर्फ़ दिल्ली तक सीमित नहीं है। अमीर वर्ग में कार स्वामित्व बढ़ने से छोटे शहरों और कस्बाई इलाकों में भी, जहाँ कभी हवा अपेक्षाकृत साफ हुआ करती, ट्रैफिक जाम और भारी प्रदूषण आम हो गया है।

भारत के नवउदारवादी विकास मॉडल ने कार स्वामित्व और सड़क परिवहन को केंद्र में रखा है। निजीकरण की दिशा में बढ़ते कदमों ने कम-प्रदूषण वाली सार्वजनिक परिवहन प्रणाली—विशेषकर भारतीय रेल—को कमजोर किया है। सरकारी स्वामित्व वाली भारतीय रेल पुरानी है और अत्यधिक बोझ के तले चरमरा रही है। कुल माल के परिवहन में इसका हिस्सा 1991 में लगभग 60 प्रतिशत था, जो आज घटकर करीब 29 प्रतिशत रह गया है। यात्री परिवहन में रेलवे का हिस्सा भी बड़ी मात्रा में घटा है।

रेलवे की क्षमता को बढ़ाया नहीं गया। जबकि सड़क परिवहन—विशेषकर निजी और व्यावसायिक वाहनों—को अनियंत्रित ढंग से फैलने दिया गया। आज विनिर्माण क्षेत्र के कुल मूल्य वर्धन में ऑटोमोबाइल सेक्टर का हिस्सा लगभग आधा है। सड़क नेटवर्क के तेज विस्तार ने निजी और व्यावसायिक वाहनों की संख्या को बेहद तेजी से बढ़ने में मदद की है, जबकि सार्वजनिक सड़क परिवहन को सड़ने के लिए छोड़ दिया गया है। राज्य सड़क परिवहन उपक्रम, जो बड़े पैमाने पर सार्वजनिक परिवहन उपलब्ध कराते हैं, लंबे समय से उपेक्षा का शिकार रहे हैं। जहाँ कार, जीप और टैक्सियों की संख्या 8.56 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ी हैं, वहीं सार्वजनिक सड़क परिवहन की रीढ़ माने जाने वाली बसों की संख्या केवल 2.48 प्रतिशत की दर से बढ़ी है।

पिछले कुछ दशकों में केंद्र सरकार ने अपने पूंजीगत व्यय का एक बड़ा हिस्सा सड़क निर्माण पर खर्च किया है, ताकि वाहन-केंद्रित अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दिया जा सके। वर्तमान में भारत का सड़क नेटवर्क दुनिया के विशालतम सड़क नेटवर्कों में से एक है। यह भारत के भूगोल और जनसंख्या घनत्व के लिहाज से बिल्कुल असंगत है। भारत की कुल सड़क लंबाई अब चीन से भी अधिक है, जबकि चीन का भू क्षेत्रफल भारत से तीन गुना ज्यादा है और उसकी अर्थव्यवस्था भी बहुत बड़ी है। इसके उलट, भारत की रेलवे प्रणाली ठप पड़ी है। 2010 में भारत और चीन की रेलमार्ग की लंबाई बराबर थी। इसके बाद से जहाँ भारत की रेलमार्ग की लंबाई केवल लगभग 6 प्रतिशत बढ़ी, वहीं चीन के रेलमार्ग की लंबाई लगभग 65 प्रतिशत बढ़ी। आज चीन के रेलमार्ग की लंबाई भारत से लगभग 60 प्रतिशत बड़ी है।

ग़रीबी और प्रदूषण

एक ओर जहाँ अमीरी प्रदूषण बढ़ा रही है, वहीं दूसरी ओर भारत की असमान विकास प्रक्रिया लाखों परिवारों को अब भी चूल्हे की आग के लिए जलावन की लकड़ी इकट्ठा करने पर मजबूर कर रही है। यह किसानों के एक बड़े तबके को पराली जलाने जैसी प्रथाओं की ओर धकेल रही है। समाज के निचले पायदान पर मौजूद लोगों की ज़िंदगी से कोसों दूर रहने वाला आर्थिक विकास उन्हें वैकल्पिक साधनों को अपनाने की क्षमता से महरूम रखता है। यह भी वायु प्रदूषण के बढ़ने के एक कारण है।

यह अनुमान लगाया है कि उत्तर भारत में सर्दियों के दौरान होने वाले कुल प्रदूषण का लगभग 30 प्रतिशत हिस्सा जैविक पदार्थों को जलाने से आता है। इन जैविक पदार्थों में खाना पकाने और सर्दियों में घर गर्म रखने के लिए जलाई जाने वाली लकड़ी और गोबर, तथा अक्टूबर-नवंबर में जलाई जाने वाली पराली शामिल हैं।

ग्रामीण परिवारों को जलावन लकड़ी के प्रयोग से हटाकर एलपीजी के प्रयोग की ओर ले जाने वाली सरकारी योजनाएँ वित्तपोषण के अभाव से जूझ रही हैं। इस वजह एलपीजी का उपयोग ग्रामीण भारत के बड़े हिस्से के लिए बहुत महँगा साबित होता है और महिलाओं द्वारा इकट्ठा की गई लकड़ी अब भी ऊर्जा का प्रमुख स्रोत बना हुआ है। हीटर जैसे बिजली के उपकरणों से आग तापना तो वैसे ही अधिकांश परिवारों के बहुत महंगा पड़ता है, इसलिए उत्तर भारत के देहाती इलाकों में आग ही ठंड भगाने का मुख्य जरिया होती है। शहरों के प्रवासी मज़दूर भी आग के भरोसे ठंड काटते हैं।

मोहित शेलारे (भारत), पीली रेखा से परे की की साँस, 2018.

क्या क़ुसूर किसानों का है?

मध्य अक्टूबर से लेकर नवंबर तक पराली जलाने से उठने वाला धुआँ पहले से ही मौजूद भारी प्रदूषण में सिर्फ़ एक अस्थाई इज़ाफ़ा करता है। इसका का मूल कारण मोटर वाहनों और अन्य स्रोतों से होने वाला प्रदूषण ही है। भारतीय मीडिया हर साल इसी अस्थाई उछाल को मुख्य दोषी बताने में रम जाता है। इस तथ्य से बड़ी साफ़गोई से आँखें फेर ली जाती हैं कि पराली जलाना बंद जो जाने के काफी वक़्त बाद दिसंबर और जनवरी में भी प्रदूषण का स्तर उतना ही गंभीर बना रहता है। इससे साफ़ होता है कि दिल्ली और पूरे इलाके में ज़हरीली हवा का प्रमुख कारण मौसमी नहीं है, बल्कि वो कारक हैं को पूरे साल सक्रिय रहते हैं। इस फ़ेहरिस्त में सबसे ऊपर मोटर वाहन आते हैं।

साल 2023 में दिल्ली में केवल एक ही दिन ऐसा था जब वायु की गुणवत्ता को “अच्छा” दर्जा मिला था। 2024 में तो एक भी दिन की वायु को अच्छी गुणवत्ता का दर्जा नहीं मिला। यह दर्शाता है कि पूरे वर्ष बने रहने वाले प्रदूषण का कारण सिर्फ़

पराली जलाना नहीं हो सकता, जो सिर्फ़ सर्दियों के मौसम में एक महीने तक होता है।

वाहन प्रदूषण के मूल मुद्दे का सामना करने से सरकार इसलिए बचती रही है क्योंकि इसे हल करने के लिए निजी वाहनों को प्राथमिकता देने वाली नीति छोड़कर सस्ती, सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था को बेहतर करने की पहल करनी पड़ेगी। इसकी बजाय सरकार ने किसानों को निशाना बनाना चुना है।

यह सत्य है कि पराली जलाने से हवा की गुणवत्ता प्रभावित होती है। किसान भी इस बात को जानते हैं। शहरों तक पहुँचने से पहले यह धुआँ सबसे पहले उनके अपने गाँवों की आबोहवा को जहरीला बनाता है। खेती के घाटे का सौदा होने और राज्य की घटती सहायता की स्थिति में उनके पास कोई व्यवहारिक विकल्प ही नहीं बचता। किसान अगर पराली को जल्दी नहीं हटाएं तो रबी की बुवाई में देरी हो जाती है, जिससे खेती का चक्र बाधित हो जाता है।

जलवायु परिवर्तन से हालात और ज्यादा खराब हो गए हैं। पिछले पाँच–छह वर्षों से दक्षिण–पश्चिम मानसून उत्तर भारत में देर से पहुँच रहा है। जून पहले सामान्यत: खरिफ़ की बुवाई का महीना होता था। लेकिन अब यह साल–दर–साल सूखा रह जा रहा है। इस कारण बुवाई जुलाई तक टल जा रही है और खरीफ़ की कटाई सर्दियों में हो रही है। कई बार मानसून की बारिश अक्टूबर तक होती है, जिससे कटाई के तैयार खड़ी फसल को सूखने के लिए कई अतिरिक्त हफ़्तों के लिए छोड़ना पड़ता है। इन सब कारणों से धान की कटाई के बाद रबी की गेहूँ की बुवाई से पहले उसके अवशेषों को प्राकृतिक रूप से सड़ने के लिए बहुत कम समय मिलता है।

भारत में अधिकांश किसान छोटे और सीमांत हैं और बमुश्किल खेती की लागत निकाल पाते हैं। ऐसी स्थिति में यहाँ बदलती जलवायु के अनुकूल तकनीकों में निवेश करना और फसलों की नई किस्में विकसित करना सरकार की ज़िम्मेदारी है। ऐसा करने के बजाय भारतीय राज्य वर्तमान में मौजूद सीमित राजकीय सहयोग को भी वापस लेने में लगा हुआ है। किसानों को राजकीय सहयोग मुख्यत: धान और गेहूँ के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) के रूप में ही मिलता है। सरकार लंबे समय से एमएसपी को समाप्त करने और कृषि बाज़ारों को पूरी तरह कॉरपोरेट क्षेत्र के हवाले करने की कोशिश करती रही है।

सरकार अक्सर पानी बचाने, जलवायु परिवर्तन के अनुसार ढलने, और बाज़ार की अनिश्चितताओं से निपटने के लिए किसानों का आह्वान करती है कि वो फसलों का विविधीकरण करें। लेकिन सरकार इसके लिए न तो वैकल्पिक फसलों के लिए कोई ठोस मूल्य समर्थन देती है, न ही नई किस्मों और कृषि तकनीकों में पर्याप्त निवेश करती है। यह ज़िम्मेदारी वह एग्री–बिजनेस कंपनियों पर छोड़ देती है, जिसके कारण फसलों का विविधीकरण किसानों के लिए आर्थिक रूप से अव्यवहारिक हो जाता है।

फसल अवशेष प्रबंधन के लिए आवश्यक तकनीकों में निवेश करने और किसानों को उन्हें अपनाने हेतु आवश्यक आर्थिक सहायता देने की बजाय सरकार ने पहले से ही आर्थिक तंगी झेल रहे किसानों पर भारी जुर्माना थोपना चुना है। साथ ही, मीडिया लगातार ऐसी नकारात्मक रिपोर्टें चला रही है जिनमें किसानों को प्रदूषण के लिए ज़िम्मेदार बताया जा रहा है। इस तरह की रिपोर्टों का एक राजनीतिक उद्देश्य होता है: किसानों के प्रति जनता की सहानुभूति को कम करना और भविष्य में ऐसी नीतियों एवं कानूनों के लिए माहौल तैयार करना जो कृषि को अपने चंगुल में लाने की कोशिश कर रहे कॉर्पोरेट हितों को लाभ पहुँचाएँ।

प्रदूषण के लिए किसानों को बलि का बकरा बनाना उन कॉर्पोरेट कंपनियों के लिए दो तरह से लाभदायक है जिनके हितों को भारतीय राज्य सक्रिय रूप से बढ़ावा देता है। पहला, यह किसानों की 'पिछड़ी हुई प्रथाओं' को आधुनिक बनाने की आवश्यकता पर जोर देकर कृषि के कॉर्पोरेटकरण की आधारशिला तैयार करता है। दूसरा, यह प्रदूषण के असली कारणों—जैसे ऑटोमोबाइल उद्योग, निजी वाहनों की बढ़ती संख्या, और सार्वजनिक परिवहन की लगातार उपेक्षा—से ध्यान भटकाने के लिए एक कारगर औज़ार का काम करता है।

(यह लेख ग्लोबट्रॉटर द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है।)

सृजना बोदापति

(सृजना बोदापति भारत में कृषि संबंधों का अध्ययन करती हैं और देश भर में कई अध्ययनों में भाग ले चुकी हैं। वह भारतीय अर्थव्यवस्था से जुड़े मुद्दों पर लिखती रहती हैं।)